

हिन्दी सिनेमा में दलित पात्रों की छवि

कमला राय

(शोधार्थी)

डॉ. सुषमा कुमारी

(एसोसिएट प्रोफेसर)

मिज़ोरम विश्वविद्यालय, आइजोल-796004 फोन न.-8285487667

शोध सार:-सिनेमा हो या साहित्य, दोनों ही समय-समय पर समाज के दर्पण के रूप में भी उभरते रहे हैं। यानी समाज में जो कुछ भी घटित होता है वो साहित्य और सिनेमा में भी दिखाई देता है। हिन्दी सिनेमा में दलितों की छवि किस प्रकार की प्रस्तुत की गई है, इसकी पड़ताल इस आलेख के माध्यम से की जाएगी। दलितों की सामाजिक स्थिति और उनके सिनेमाई रूपांकन का अवलोकन करते समय यह देखा जा सकता है कि कई बार उनके व्यक्तित्व और रूप-रंग को केवल मेकअप और बाहरी दिखावे से गढ़ा जाता है। यदि हम दलित समाज की समस्याओं पर दृष्टिपात करें, तो पाएँगे कि वे शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक – लगभग सभी स्तरों पर लंबे समय तक हाशिए पर रखे गए हैं। इसीलिए यह आवश्यक है कि हम सिनेमा के माध्यम से यह जानने का प्रयास करें कि सिनेमा की लोकप्रिय संस्कृति में उन्हें किस प्रकार चित्रित किया गया है।

बीज शब्द :दलित, सिनेमाई रूपांकन, दलित अस्तित्व, सौंदर्य-विधान, विरोधाभास प्रसंगों, आकर्षक, वास्तविक संघर्ष, संस्कृति, सामाजिक स्थिति, व्यंग्य, लैंगिक पक्ष, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक।

मूल आलेख - कुछ दशक से हिन्दी सिनेमा में दलित समुदाय पर, पूर्व की फिल्मों की तुलना में अधिक ध्यान देने का प्रयास किया गया है। 'चार दिल चार राहें' 1959, 'चिरूथा' 1981, सौतन 1983, पिता 2002, जैसी फिल्मों पूर्ण रूप से दलित प्रश्न को केंद्र में नहीं लातीं, किन्तु इनके विभिन्न प्रसंगों में उसका आभास अवश्य मिलता है। 'रूदाली', 'मसान', 'आर्टिकल 15', 'गुठली लड्डू' और 'धड़क 2' जैसे फिल्मों को देखा जा सकता है, जिसमें दलित को केंद्र में रखा गया है, जहाँ दलित या वंचित वर्ग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चित्रित हुए हैं। लेकिन शुरूआती दौर से ही, हिन्दी सिनेमा में दलितों की प्रस्तुति ज्यादातर कमजोर, गंदे-मैले, फटे हाल में किया गया है। सही ढंग से इन पात्रों की प्रस्तुति बहुत कम हुई है और यह सोचने वाली बात है। यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या केवल दलितों को हिन्दी सिनेमा मैले-कुचले रूप में ही दिखाता रहेगा? क्या ये समाज इसी तरह दिखाई दे सकते हैं? क्या वे हर समय हाशिये पर पड़े, दीन-हीन और अस्वच्छ ही प्रतीत होंगे? समाज किस आधार पर यह मान सकता है कि दलित स्वच्छ वस्त्र धारण नहीं कर सकते? या सम्मानजनक रूप में उपस्थित नहीं हो सकते? वस्तुतः वस्त्रों का अभाव तो उस व्यक्ति में भी हो सकता है जो आर्थिक रूप से कमजोर है, सीधे-सीधे जातिगत पहचान से जुड़ा हुआ होना आवश्यक नहीं है। यदि दलित केवल दीन-हीन, मैला और लाचार समझे जाते तो आज वे अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत और संगठित नहीं हो पाते। वास्तविकता यह है कि दलित समुदाय अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा है और उनके लोग सशक्त होकर अब वंचितों की आवाज उठाने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। इसीलिए यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि हर दलित व्यक्ति को मैला, लाचार और निर्बल के रूप में सीमित करके दिखाना न केवल एकपक्षीयदृष्टि है बल्कि उनके वास्तविक संघर्ष और उपलब्धियों का भी हनन है। यहाँ

विशेष ध्यान देने योग्य है कि दलित पात्रों की छवि किस रूप में प्रस्तुत की जाती है। उदाहरण स्वरूप, 'चार दिल चार राहें' 1959, में 'मीना कुमारी' (चावली) को एक दलित स्त्री के रूप में प्रस्तुत करने के लिए उनको पूरी तरह सांवले रंग का दिखाया है, जबकि असल जिंदगी में वे बहुत ही खूबसूरत महिला थीं। 'सौतन' फिल्म (1983) में गोपाल बाबू जो कि एक हरिजन हैं उनको भी सांवले रंग में प्रस्तुत किया गया है। इसी तरह कई फिल्मों में भी दलित पात्रों को साफ-सुथरा न दिखाकर रूप रंग से सांवलाया गंदे रूप में दिखाया गया है। 'गुठली लड्डू' (2023) में दो दलित (भंगी) बच्चे जिनको एकदम निर्बल और कमजोर दिखाया है, जिसके शरीर पर कपड़े के नाम पर गंदा फटा मैला वस्त्र रहता है। उन दोनों के मन में शिक्षा की ललक रहती है, लेकिन बाधा है उनकी जाति। यह एक विरोधाभास एवं व्यंग्य की तरह प्रतीत होता है कि वास्तव में समाज दलितों के अस्तित्व को कैसे देखना चाहता है।

हालांकि कुछ फिल्मों में हैं जिसमें दलितों को साफ-सुथरे वस्त्र और सही रूप रंग में दिखाया गया है। जैसे प्रकाश झाकी 'आरक्षण' (2015) और सार्थक दासगुप्ता '200 हल्ला हो' (2021)। 'आरक्षण' के दीपक कुमार (सैफ अली खान) '200 हल्ला हो' की 'आशा' (रिंकू राजगुरु) जिसमें पढ़े-लिखे दलित नायक - नायिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जो अपने अधिकार की भी बात करते हैं। धड़क 2 में सिद्धांत चतुर्वेदी, जो कि एक दलित पात्र है उसे साधारण कपड़े व सांवले रंग में दिखाया गया है। दिक्कत यह है कि जब एक दलित पात्र किसी गीत-संगीत के प्रसंग में आता है तो भव्य और सजे-संवरे रूप में पर्दे पर दिखाया जाता है। यह विरोधाभास अपने-आप में संकेत करता है कि हमारे सामाजिक दृष्टिकोण में दलितों की छवि किस प्रकार गढ़ी गई है या बनी हुई है। यह प्रश्न उठता है कि क्या दलित केवल 'मैले' ही दिख सकते हैं? क्या वे सदैव हीन या हाशिए पर पड़े हुए ही प्रतीत होंगे? क्या समाज यह मान चुका है कि वे स्वच्छ वस्त्र धारण नहीं कर सकते या बेहतर जीवन-शैली नहीं जी सकते? वास्तविकता यह है कि आर्थिक तंगी किसी भी वर्ग को प्रभावित कर सकती है और उसका जाति-विशेष से सीधा संबंध नहीं होता। यदि प्रत्येक दलित केवल अभावग्रस्त अथवा अस्वच्छ जीवन का प्रतीक होता, तो आज दलित समाज अपने अधिकारों के लिए सशक्त प्रतिरोध खड़ा न कर पाता। वस्तुतः कई दलित समुदाय न केवल संघर्षरत हैं बल्कि अपनी आवाज को मुखर और व्यवस्थित ढंग से समाज के समक्ष रखने में भी सफल हो रहे हैं। 'लापता लेडीज' का उदाहरण लें तो वहाँ दलित प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से केंद्र में नहीं है, किन्तु आर्थिक रूप से निर्बल वर्गों का चित्रण अवश्य किया गया है। यहाँ भी देखा गया है कि जिन्हें 'निचले वर्ग' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उन्हें प्रायः कम आकर्षक, दबे-कुचले और उपेक्षित रूप में ही परदे पर दिखाया गया है। विशेष रूप से वेशभूषा और साज-सज्जा (मेकअप) के स्तर पर पात्रों को अक्सर अत्यंत अप्रिय ढंग से दर्शाया जाता है। यदि 'मसान' (2015) फिल्म पर दृष्टि डालें तो वहाँ विक्की कौशल, जो कि एक दलित जाति (डोम)का पात्र है, का चरित्र एक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिल्म में उनका कार्य श्मशान घाट पर दाह-संस्कार करना है।

रूप से, ऐसा कार्य करते समय उनका शारीरिक रूप-रंग आग की लपटों, धुआँ और वातावरण की कठोरता से प्रभावित दिखाई देना स्वाभाविक लगता है।

लेकिन यह भी नज़र अंदाज नहीं किया जा सकता कि उन्हें विशेष रूप से 'बेचारा' और 'बेबस' दर्शाने के लिए मेकअप और वेशभूषा का चयन उसी प्रकार किया गया, जिससे उनकी सामाजिक- आर्थिक स्थिति और अधिक दयनीय प्रतीत होती है। यह केवल मसान तक सीमित नहीं है। समग्र रूप से देखा जाए तो हिंदी सिनेमा में दलित पात्रों को सशक्त और आत्मनिर्भर रूप में प्रस्तुत करने के उदाहरण अत्यंत दुर्बल ही मिलते हैं। अधिकतर कहानी में ऐसे पात्रों को या तो शोषण, असहायता के प्रतीक के रूप में स्थिर कर देती है, या उन्हें विद्रोह की स्थिति तक लाकर भी अंततः बेबस दिखाने में ही समाप्त हो जाती है। विशेषकर दलित युवकों को कभी-कभार विद्रोही रूप में उद्घाटित किया गया है, लेकिन दलित स्त्रियों का चित्रण और भी अधिक निराशाजनक है। प्रायः उन्हें घरेलू-श्रम या किसी पर निर्भर कार्यों में दिखाया गया है, जैसे ऊँची जातियों के घरों में काम करना, उनके जूठन बटोरना अथवा नौकरानी के रूप में रहना। जैसे-फ़िल्म 'अंकुर' (1973) में सबाना आजमी

(दलित स्त्री की भूमिका में) जमींदार के घर नौकरानी का काम करती है तथा जिसका जमींदार के बेटे के द्वारा शारीरिक शोषण भी किया जाता है। 'गंगा की सौगंध' (1978) फ़िल्म में रेखा एक दलित स्त्री की भूमिका में है, जो जमींदार के घर में काम करती है और उसके साथ जमींदार दुष्कर्म करने का प्रयास करता है। 'गौरैया' (2022) फिल्म में भी गौरैया नाम की दलित स्त्री को पहले बंधुआ मजदूर बनाया जाता है, फिर उसके साथ शारीरिक शोषण किया जाता है। इन दृश्यों से यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि, श्रम का मूल्यांकन जातिगत संरचना के आधार पर किया जाता है और स्त्री-श्रम को दोहरी अस्मिता (जाति और लिंग) के बोझ तले दबा दिया जाता है। इस सन्दर्भ में कुलदीप सिंह का कथन उल्लेखनीय है - 'समाज में रहते हुए नारी भी हाशिए के समाज का हिस्सा है। उनके प्रति भी समाज दोगले दर्जे की मानसिकता रखता है। इस दोगले दर्जे में दलित महिलाएं सवर्ण महिलाओं की अपेक्षा शोषण का शिकार अधिक होती हैं...।' ¹ इतना ही नहीं, अक्सर हिंदी सिनेमा में दलित स्त्रियों को उत्पीड़न का शिकार दिखाया जाता है। 'एक तो नारी ऊपर से दलित। हिन्दी सिनेमा भी दलित महिलाओं के उत्थान के प्रति निष्क्रिय रही है। अब तक के सिनेमाई इतिहास में दलित महिलाओं का चित्रण मात्र वस्तु, बेचारी, लाचारी आदि के रूप में किया है। जिसको जब चाहा उपयोग किया और फेंक दिया।' ² यह समाज का और उससे प्रभावित हिन्दी सिनेमा का बहुत बड़ा विडंबना ही है जो उनके संघर्ष या उसके समाधान का रास्ता उन्हें स्वयं निर्मित करने के बजाय, हिन्दी फिल्म की कहानी में अंततः किसी 'मुक्तिदाता' के सहारे को दिखाती है। यह मुक्तिदाता दरअसल सवर्ण पुरुष पात्र ही होते हैं, जो या तो मसीहा की तरह उन्हें बचाता है या उनके जीवन को अर्थ प्रदान करता है। इस प्रकार एक तरफ़ा प्रस्तुतीकरण में दलित स्त्रियों की (सत्ता) को लगभग नकार दिया जाता है।

निष्कर्ष :- हिन्दी सिनेमा में दलित की भूमिका को समझने का प्रयास किया गया। इस आलेख के माध्यम से हमने यह समझने का प्रयास किया की किस तरह हिन्दी सिनेमा दलित पिछड़ा वर्ग को सिनेमा के पर्दे पर प्रस्तुत करता है और उनकी असली पहचान को छिपाकर कैसे उनके रूप-रंग को एक रूढ़िबद्ध तरीके से पेश करता है। इनकी दिन-हीन अवस्था की चर्चा बहुत हो चुकी। अब इन्हें भी सम्मान जनक प्रस्तुति की आवश्यकता है। समय के साथ-साथ अब दलित समुदाय के लोगों में जागृति आ रही और चेतना जाग रही है। लोग जागरूक हो रहे हैं। हिन्दी सिनेमा दलितों के संघर्षों को न दिखाकर उन्हें दुर्बल और कमजोर दिखाते हैं। अब हिन्दी सिनेमा में दलितों के असली संघर्ष

को उजागर करने की आवश्यकता है, जो दलित समाज की मांग है। हिन्दी फिल्मों में शिक्षा और समानता की बात बहुत ही कम की गई है, जिसकी सबसे ज्यादा जरूरत है। अतः यह स्पष्ट है कि हिंदी सिनेमा में दलित और वंचित वर्गों की छवि अब भी पूरी तरह संतुलित या यथार्थपरक नहीं है। यह शोध का महत्वपूर्ण विषय है कि किस प्रकार दृश्य-प्रस्तुतीकरण के जरिए सामाजिक कल्पनाएँ गढ़ी जाती हैं और कैसे वे हमारे सामूहिक चेतन में स्थायी भूमिका ग्रहण करती हैं।

सन्दर्भ :-

1. पूर्वोत्तर प्रभा, संपादक - डॉ. चूकी भूटिया, 'आलेख-हिन्दी सिनेमा में दलित जीवन की अभिव्यक्ति,
2. कुलदीपसिंह', हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम, जनवरी-जून 2021, पृष्ठ संख्या-45
3. वही, पृष्ठ संख्या- 45
4. आर्टिकल 15, निर्देशक, अनुभव सिन्हा, (2015)
5. <https://youtu.be/clhoTCTpJmY?feature=shared>
6. आरक्षण, निर्देशक, प्रकाश झा, (2015)
7. <https://www.youtube.com/watch?v=nEm8yMXwIis>
8. अंकुर, निर्देशक, श्याम बेनेगल (1973)
9. <https://youtu.be/zlURxHM0cm4?feature=shared>
10. गुठली लड्डू, निर्देशक, इशर आर खान, (2023)
11. <https://youtu.be/3cBbOWNfJ0w?feature=shared>
12. गौरैया, निर्देशक, राजेश हंस, सुमित चावला, (2022)
13. https://youtu.be/QfKou_mdYW0?feature=shared
14. गंगा की सौगंध, निर्देशक, सुल्तान अहमद, (1978)
15. <https://youtu.be/-4QhLG8xOsE?feature=shared>
16. चार दिल चार राहें, निर्देशक, ख्वाजा अहमद, (1959)
17. <https://youtu.be/o8VpZgsFMNA?feature=shared>
18. चिरूथा, निर्देशक, तनवीर अहमद, (1972)
19. <https://youtu.be/7bRKslyX2mw?feature=shared>
20. पिता, निर्देशक, महेश मांजरेकर, (2002)
21. <https://youtu.be/gbQgn91uesM?feature=shared>
22. मसान, निर्देशक, नीरज घेवान (2015) <https://youtu.be/ozioF9xf1x4?feature=shared>
23. सौतन, निर्देशक, सावन कुमार, (1983)
24. <https://youtu.be/G6nlwz4sAxE?feature=shared>